International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 01-07-2020; Accepted: 15-07-2020; Published: 02-08-2020
www.hindijournal.com
Volume 6; Issue 4; 2020; Page No. 79-80

धार्मिक कुरीतियों के चक्रव्यूह :और नारी जीवन

नीता सिंह [1], आशुतोष कुमार द्विवेदी [2]
[1] शोध निर्देशक, प्राध्यापक,हिन्दी विभाग, शा. कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय रीवा, मध्य प्रदेश, भारत
[2] शोधार्थी, हिन्दी विभाग, अवधेश प्रताप सिंह वि. वि.रीवा, मध्य प्रदेश, भारत

प्रस्तावना

धार्मिक कुरीतियाँ या परम्परा स्त्री की मर्यादा की रक्षा करने की माँग करती है। जो पुरूष सत्तात्मक समाज ने उस पर थोपी है। वास्तव में पुरूष सत्तात्मक समाज ने परम्परा रूढ़ियों कुरीतियों द्वारा स्त्री को शोषित करने का उपाय ढूंढ रखा है। धार्मिक परम्परायें हो या रीतिरिवाज सबका ध्येय एक ही है स्त्री का शोषण ।बाल विवाह सती प्रथा विधवा विवाह पर रोकने जैसी अनेक कुरीतियों ने स्त्री पर पुरूष का नियंत्रण बनाये रखने में अस्त्र के समान कार्य किया है सही मायने में इन कुरीतियों ने स्त्री को नियंत्रित ही नहीं किया है। बल्कि स्त्री का अस्तित्व समाप्त करके पुरूष के हांथों का एक खिलौना बना दिया है, जिसे वह मन बहलाने के लिए प्रयोग न करने की स्थिति में उसे छोड़ सकता है तथा तोड़ सकता है। धार्मिक कुरीतियों एवं रीतिरिवाज के द्वारा स्त्रियों को नियंत्रित करने का प्रयास पुरूष समाज में किया गया है, ये धार्मिक रीतिरिवाज पुरूष द्वारा स्त्री को नियंत्रण करने की चाल है। सीमोन लिखती हैं कि–''विद्वानों, पुरोहितों, दार्शनिकों, लेखकों और वैज्ञानिकों ने अब तक यह दिखाने की चेष्टा की है कि औरत की अधीनस्थ स्थिति स्वर्ग में ही बनाई गई। जिस धर्म का अन्वेषण पुरूष ने किया, वह उसकी अधिपत्य की इच्छा का अनुचित है।''[1] धार्मिक रीतिरिवाज, कुरीतियाँ, परम्परायें सब पुरूषों द्वारा निर्मित है, इन्हीं के चलते स्त्री ने लिंग भेद और अन्य दुर्दशा को वहन किया है। धर्म के ठेकेदारों ने स्त्री की निन्दा खुले रूप से की है परम्परा धार्मिक रीतिरिवाज के नाम पर स्त्री को स्त्री को अनुशाषित कर उसे अपना उपनिवेश बना लिया है। स्त्री को एक यान्त्रिक मशीन बना दिया है जिसका सम्पूर्ण जीवन मातृत्व पालन – पोषण , पति–सेवा, पुत्र–सेवा, ससुरालपक्ष के लोगों की सेवा में व्यतीत होता है, अपने और अपने माता–पिता के प्रति उसका कोई कर्तव्य नहीं है। माता–पिता के लिए वे पराया धन मानी जाती है। सारे जीवन पुरूष की सेवा करने के फल में उसे क्या प्राप्त होता है। कुछ नहीं , एक भ्रम जिसमें उसे अपने परिवार और अपनों के होने का एहसास रहता है। पुरूषों से शारीरिक मानसिक कष्टों को प्राप्त करके भी वह इस परिवार समान सुरक्षा चक्र बाहर जाने का साहस नहीं कर सकती है, क्योंकि स्वतंत्र रहना उसने सीखा ही नहीं है। उसकी स्थिति उस कबूतर पक्षी के समान है, जो पिजरे में बंद रहने पर उड़ना भूल जाता है स्त्री को न जीने का अवसर मिलते हैं न ही प्रतिमा को व्यक्त करने को क्योंकि पुरूष सत्ता ने स्त्री को स्वतंत्र नहीं बनने दिया है। इन सारे तथ्यों पर वर्तमान लेखकों ने भी बहुलता से अपनी कलम चलाई है। और नारी की समस्त समस्याओं पर समाज का ध्यान खींचा है

वास्तव में सभी सभ्यताएँ स्त्री को हीन मानकर चलती है, स्त्री के प्रति पुरूष समाज का रवैया घृणा से भरा व अपमानजनक रहा है जो दर्शाता है कि हमारी सभी परम्पराएँ व रीतिरिवाज स्त्री विरोधी रहे हैं ये हमारे संस्कार ही है जो स्त्री को यह मानने को मजबूर कर देते है कि हमारे धर्म के ठेकेदारों ने स्त्री को वेद पाठ न करने गायत्री मन्त्र न करने के नियम बनाये है। एक स्त्री विरोधी परम्पराओं को अपनी नियति मानती है। स्त्री स्वयं ही इन धार्मिक परम्परा के उत्पीड़न को झेलती है, क्योंकि स्त्री को बचपन से ही मानसिक तौर पर उसके स्त्री होने का अहसास दिलाया जाता है। पितृसत्तात्मक समाज –स्वयं कि सत्ता को बनाये रखने के लिए स्त्री को जन्म से ही उनके नियमों से घेर देता है। सीमोन लिखती हैं''औरत जन्म से ही औरत नहीं होती बल्कि औरत बनाई जाती है। कोई भी जैविक, मनोवैज्ञानिक, या आर्थिक नियति आधुनिक स्त्री के भाग्य की अकेली नियन्ता नहीं होती।''[2] पितृकसत्ता धर्म का सहारा लेकर स्त्री पुरूष सत्ता के विचारो का ऐसा जाल बुनते हैं कि स्त्री ही दूसरी स्त्री के शोषण की भागीदारी हो जाती है, चाहे भ्रूण हत्या हो या 'दहेज' या सती के नाम पर स्त्री का खून रहा हो , सभी रूप से स्त्री को नष्ट करने वाली स्त्री धार्मिक पितृक सोच की स्त्रियों की भागीदारी बनाई गई है।शोषण करने वाली स्त्री धार्मिक कर्तव्यों या स्वार्थों के बीच यह भूल जाती है कि स्वयं भी एक स्त्री है। धर्म के नाम पर स्त्री का वध सही ठहराया जाता रहा है और स्त्री अपनी ही इस दुर्दशा में भागीदार रहती है, राजेन्द्र यादव स्त्री की इस भूमिका के बारे में बताते हुए कहते हैं '' पुरूष जिसे माँ–बेटी–बहन प्रिय कहकर गले लगाता है उसे ही तथाकथित शास्त्र–पोषित–सामाजिक मर्यादाओं या विश्वासों के नाम पर नृशंस होकर मार डालता है। कभी उसके पैदा होते ही । आजकल तो भ्रूण रूप में तो कभी वय प्राप्त करने पर सबसे ज्यादा दिया दहला देने वाली बात यह है कि उसने इस स्त्री वध अनुष्ठान में खुद स्त्री को अपना सहयोगी बना लिया है।मानसिक अनुकूलन की हद तो यहां तक कि स्त्री स्वयं , बिना पुरूष की उपस्थिति के , स्वेच्छा से अपनी हत्या के इस अनुष्ठान को सम्पन्न करती है।[3] इन परम्पराओं के कारण भी स्त्री पुरूष के प्रभुत्व में रहती है। परम्पराओं ने स्त्री को जिम्मेदारी दी है, पीड़ा दी है, अपने अस्तित्व के बारे में न सोच पाने की और अपने मन की न की पाने की ।पुरूष सत्ता के अनुशासन का एक शस्त्र ये धार्मिक परम्परायें थी जो कुरीतियों के रूप में स्त्री के जीवन को नारकीय बनाने में सहयोग देती रही है। परम्पराओं में निहित स्त्री – पोषण की राजनीति से पुरूष वर्ग पूरी तरह से परिचित है और इसका अपराधबोध कहीं न कहीं पुरूष सत्ता में रहा है यही पुरूषोत्तम अग्रवाल कहते है–''एक बात निःसंकोच कही जा सकती है कि सभी परम्पराएँ और सभ्यताएँ स्त्री के संदर्भ में कही–न–कही गहरी हीनता ग्रन्थि और अपराधबोध से ग्रसित है, इसलिए हिन्दुत्व के ठेकेदार स्त्री की दुर्दशा के लिए इस्लाम को कोसते है,और इस्लाम के मुजाहिद हिन्दू धर्म को तथा दोनों मिलकर धम निरपेक्ष आधुनिकता को।'[4] अपरोधबोध कहे या स्त्री चेतना पर पुरूष इन परम्पराओं की वास्तविकता से परिचित है यही कारण है कि इन कुरीतियों को समाप्त करने में राजाराम मोहन राय, महात्म गाँधी जैसे लोगों ने भाग लिया। संवेदनशील

व जागरूक पुरूषों की भागीदारी के बावजूद भी स्त्री पूर्ण रूप से परम्परा और रीतिरीवाज ने स्त्री को जिम्मेंदारी दी हे, उसको समाज में पुरूष से हीन बनाने का प्रयत्न किया है, अपने इस प्रयत्न में वे सदियों तक सफल भी रहे है।

भारत में स्त्री को समान रूप से कानूनी अधिकार प्राप्त है, परन्तु सामाजिक बन्धन और धार्मिक कुरीतियाँ स्त्री को उन अधिकारों का उपयोग करने में समर्थ नही बनने देती है। पर्दा प्रथा जैसी कुरीति स्त्री को बाहर आकर हक मांगने मे रूकावट लाती है, भले ही यह प्रथा हिन्दू समाज में अब कुछ हद तक कम हुई है लेकिन इस्लाम धर्म की स्त्री के लिए यह अभी भी उसी रूप में है जो पुराने समय मे थी। बाल विवाह का प्रभाव स्त्री की प्रतिभा , सोच सबको नियमित करता है, बाल विवाह स्त्री को बचपन से ही गुलामी के बन्धन में बांध देता है, वह जागरूकता का एक मार्ग, शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाती है न ही अपनी प्रतिभा को पहचान पाती है। विधवा विवाह पर रोक एक नारी के जीवन को गुलामी के लिए मजबूर कर देता है क्योंकि बिना विवाह पर रोक एक विधवा जो आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नही है, इसका जीवन किस प्रकार का होगा? पति पर ही भावनात्मक , आर्थिक , सामाजिक रूप से निर्भर भारतीय स्त्री विधवा होते ही मृत्यु समान जीवन जीने को मजबूर हो जाती है।

विधवा की दुर्दशा की चरम अवस्था थी सती प्रथा, यह एक ऐसी अमानवीय प्रथा थी , जिसमें स्त्री सभ्यता का पालन करती हुई अपने पति को भगवान के समान समझती हुई पति के मरने पर उसके साथ भर जाती है हिन्दू शास्त्र में ऐसी स्त्री को देवी का दर्जा दिया जाता है और यह बहुत गौरव का विषय माना जाता रहा है कि सती प्रथा के पीछे कुछ आर्थिक कारण भी थे , स्त्री को उसको हक देने से बचने के लिए धर्म के आधार उसे ही समाप्त कर दिया जाए या आत्मदाह के लिए स्त्री को सामाजिक व मानसिक दबाव डाला जाए। लड़की के विवाह में कन्यापक्ष का वरपक्ष को धन देना, जिसे दहेज कहा जाता है यह भी एक ऐसी कुरीति है जो लड़की को समाज में समान अधिकार नहीं दिलवाने देता, यहाँ तक कि लड़की के जन्म के समय या बाद में मार दिया जाता हैं पुरूषोत्तम अग्रवाल धार्मिक परम्पराओं का जीवन पर प्रभाव बताते हुए कहते है–''भारतीय समाज ही नहीं सारी दुनिया की समाज व्यवस्थाओं और परम्पराओं ने आधी दुनिया के जीवन को आनंद के अभाव में कुंठाग्रस्थ और हिंसक बना दिया है।''[5] इन प्रथाओं ने जीवन को सुंदर नहीं बल्कि कष्टदायी बनाकर स्त्री को गुलाम बनाने में भागीदारी दी है। स्त्री कभी स्वतंत्र नहीं रह सकती बचपन में पिता के आधीन, युवावस्था में पति के आधीन, वृद्धावस्था में पुत्र के आधीन रखकर उसकी स्चतंत्रता को नियंत्रित किया जाता है। पुरूष के बिना जीवन व्यतीत करना स्त्रीकी नैतिकता पर खतरा है। समाज के ठेकेदारों ने प्रारम्भ से विवाह नामक संस्था निर्मित कर पुरूष व स्त्रियों को यौन नियंत्रण में रखने का प्रयास किया था पर ये नियम स्त्री के ऊपर ही लागू होते है क्योंकि प्रारम्भ से स्त्री का प्रयोग , पुरूष की भोग्यवस्तु के रूप में हुआ है गुलामी का जीवन जिया है। एक स्त्री अविवाहित रहकर अपनी बुद्धि प्रतिभा, योग्यता, और नेतृत्व द्वारा समाज के लिए कितनी ही योग्यता सिद्ध करें पर समाज उसे इज्जत की नजर से नहीं देखेगा क्योंकि वह तो मानता है कि पत्नी के रूप में ही स्त्री की भूमिका आदर्श भूमिका है। आदमी हमेशा से नारी की स्वतंत्रता से डरता रहा है वह नारी को नियंत्रण में रखने के शास्त्रों के साथ शस्त्रों का प्रयोग भी आवश्यक मानता है स्त्री को तोड़कर स्त्री के मन में खौफ बैठाकर ही वह उसे पालतू जानवर की तरह नियंत्रित और वफादार बना सकता है स्त्री की स्थिति पुरूष की वस्तु के समान रहें ऐसा ही पितृसत्ता समाज चाहता है। हमारी सारी धार्मिक परम्परायें इस प्रकार निर्मित की गई, जो स्त्री की स्थिति को निम्नवत करता है जो कुछ धार्मिक परम्परायें अच्छे उद्देश्य से निर्मित हुई थी कालान्तर में रूढ़ियों अन्धविश्वासों व कुरीतियों में बदलकर स्त्री की निर्योग्यता के रूप में स्थापित हुई।

प्राचीन कुरीतियां एक नहीं अनेक है, जैसे यह माना जाता है कि स्त्री अकेली नहीं रह सकती है। एक स्त्री को पत्नी माँ रूप में ही हमारे समाज में स्थान है अत : इन भूमिकाओं को वहन करने के लिए उसे विवाह करना आवश्यक है अन्यथा समाज में अनाचार फैल जायेगा । विधवा होना दुर्भाग्य से जोड़कर देखा गया है और उसे लेकर स्त्री पर अनेक प्रतिबन्ध लगाये गये है। प्राचीन कुरीतियां स्त्री की इस उपेक्षित हीन मानसिक व सामाजिक स्थिति की जिम्मेदार है! स्त्री से हर उस मर्यादा की रक्षा की जिम्मेदारी निशाने की मांग करती है, जो ताकतवर समाज ने गलत या सही उसके लिए तय की है, ये परम्परा बनाम कुरीतियां सीता की तस्वीर बनाने की इजाजत नही देता है।

भारतीय समाज में आज भी लड़की का जन्म किसी अपसगुन से कम नही समझा जाता है। विधवा स्त्री की क्या बिसात यहाँ तो कुवारी लड़की को भी अपने अनुसार पति चुनने की स्वतंत्रता नही है उसको बिना पूछे किसी भी खूटे से बांध दिया जाता है यदि कोई लड़की अपने पति को स्वयं चुनती है, तो समाज मे उसकी बहुत बदनामी होती है, प्रेम करने स्त्री को दण्ड भुगतना पड़ता है। इस अवधारणा को लेकर अनेक परम्पराओं को बनाकर स्त्री को घर में कैद किया गया जैसे उन्हें शिक्षा से वंचित रखना , बाल–विवाह होना आदि एक स्त्री कीा अपेक्षा की जाती है कवह स्वत्वहीन अस्मिता , भोग विलास शोषण दमन की वस्तु बनकर रहे क्योंकि उससे दासी के भांति घर के कार्यों को करने की अपेक्षा की जाती है पति की आज्ञा मानना ही उसका परम कर्तव्य माना जाता है। इस नियंत्रण को रखने वाले पुरूष समाज की सोच ये भूल चिन्ता यही रहती है कि औरत कहीं आजाद हो गई तो उसके हांथों से निकल जायेगी।

'निष्कर्ष

वास्तव में धर्म के नाम पर सबसे अधिक नारियों को ही पिसना पड़ा है, जिसका विवरण संक्षिप्त में मैने इस लेख में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। वैदिक युग से लेकर अब तक स्त्री की स्थिति में ज्यादा सुधार नही आया है, बल्कि घर की चारदिवारी से उसे बाहर लाने के प्रयास लगातार किये जा रहे हैं। दरअसल नारी स्वंत्रता आज भी हाशिये पर है, जिसका परिणाम यह है कि अपनी ही बहू और बेटियों के भीतर छुपे गुणों को हमारा समाज नही जान पाता और कुछ नवीन होने के सारे रास्ते बंद हो जाते हैं। धर्म के नाम पर हो रहे अत्याचार समाज में स्त्री को झेलना एक तरह से उसके लिए नियति बन गए हैं। कहीं यह कुरीतियां उसके जीवन में एक संघर्ष को जन्म देती हैं तो कहीं उसका जन्म ही इन अंधविश्वासों के बीच खत्म कर दिया जाता है। इस लेख के माध्यम से मैने अपने समाज में हो रहे अत्याचारों तथा नारियों के जीवन को अबला बनाकर उसे त्रास देने की कुरीतियों को उभारा है। कुल मिलाकर धर्म के नाम पर हो रहे स्त्री अत्याचारों के लिए समाज को नए नजरिए से सोचना की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. सीमोन द बोउवार ,स्त्री उपेक्षिता पृ 28
2. ज्ञत्री अस्मिता और अस्तित्व ,पृ. 34
3. आदमी की निगाह में औरत, राजेन्द्र यादव, पृ 26
4. पुरूषेत्तम अग्रवाल , संस्कृति वर्चस्व और प्रतिरोध , पृ, 68